IJAER/ May-June 2023/Volume-12/Issue-3 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

विद्यापति जीवन परिचय का विद्यापति का साहित्य–कर्म एवं काव्य–साधना का अध्ययन

Suman Kumar, Research Scholar, Dept of Hindi, Maharaja Agrasen Himalayan Garhwal University

Dr Poonam Devi, Professor, Dept of Hindi, Maharaja Agrasen Himalayan Garhwal University

सारांश

आज जब हम धर्म और सामाजिक सरोकारों के द्वंद्व से जूझ रहे हैं, तब क्या हमारे पूर्ववर्ती समाज से कुछ लिखित या मौखिक परंपरा की विरासत है, जिसका फलक सर्वकालिक हो? शाश्वत हो? ऐसे में विद्यापति की पदावलियाँ, जो कि संस्श्त में न होकर देसिल बयना मैथिली में लिखी गयीं, का आशय हमें समझना होगा, कि क्यों एक संस्श्त विद्वान ने अभिजातीय भाषा संस्श्त को छोड़ एक देसी, लोकभाषा को अपनी पदावलियों का माध्यम बनाया? इन पदावलियों का उद्देश्य जनसामान्य के बीच आनंद अनुभूति के संचार का था, आम जन के कामानुभूति को वृहद, विषद रूप देकर पुरुषार्थ के परम लक्ष्य निर्वाण या मानव मुक्ति का था. यह उनका सामाजिक सरोकार ही था, जो कामानुभूति को अभिजात्य का अनुभव मात्र नहीं मानकर एक गाइडबुक रच रहा था, जो जनसामान्य की भाषा में, उनके एक अंतरंग संसार का निर्माण कर रही थी। उनके सामाजिक अस्तित्व की भूमि तैयार कर रही थी, मातृभाषा को गरिमा प्रदान कर रही थी। उनकी पदावलियों के नायक और नायिका गैर–वैदिक परंपरा से निकले राधा–कृष्ण हैं, अभी तक के आदर्श परंपरा से भिन्न स्खलित स्त्री, ग्वालिन राधा और जन नायक कृष्ण जिन्हें हम मिथिला के शैव, वैष्णव और शाक्त परंपरा में पहले और बाद में भी कभी इतनी सामाजिक स्वीकृत्ति देते नहीं सामने आते हैं, वही आम जन से व्यापक और अभिन्न कनेक्ट स्थापित करते गोप–ग्वालिन नायक व नायिका राजकवि विद्यापति के वृहद सामाजिक सरोकार की ही उपज माने जा सकते हैं. समाज के आम जन को संक्रमण काल में उनकी लोकभाषा, मातृभाषा, नायक–बिंब के जरिये एक संबल प्रदान कर रही थी, ऐसा सामाजिक–भाषाई संदर्भ हमें सामुदायिक सिद्धांत व्याख्या में बिरले ही मिलता है, तभी तो चैतन्य उनके पदों में परमानंद की अवस्था को प्राप्त करते थे, टैगोर उनसे प्रेरित हो छद्म नाम से ब्रजबुली में भानुसिंह रचनावली रच रहे थे. हालांकि, कुछ विद्वान इसे संक्रमण और संस्श्त के अवसान का काल नहीं मानते, क्योंकि मिथिला में अनेकों साहित्यिक और दर्शन (नबन्याय) संबंधी नये ग्रंथ लिखे जा रहे थे. विद्यापति की ही एक अन्य रचना, पुरुष–परीक्षा, जो जेंडर विषयकसंबंधी भारतीय परंपरा में लिखी गयी पहली और आखिरी पुस्तक मानी जा सकती है।

मुख्य शब्दः नायक, संक्रमण, स्त्री,मातृभाषा, धर्म, अभिजातीय

1. परिचय

मैथिल कोकिल कवि विद्यापति आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के प्रथमोन्मेषकालीन उत्तर भारतीय वाङ्मय के सर्वाधिक ज्वाज्वल्यमान नक्षत्र है। कवि विद्यापति संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होंने अपनी अधिकतर रचनाएँ संस्कृत में ही लिखी थी। परन्तु ''देसिल बयना'' ने उनको संस्कृत के अभिजात्य से बाहर लाने के लिए आकर्षित किया। जिस कारण उन्होने संस्कृत के अलावा अवहट्ट और मैथिली में एक समान अधिकार के साथ काव्य रचना की।

साहित्यिक रचनाओं के अतिरिक्त विद्यापति द्वारा वर्णित विविध प्रसंगो से तत्कालीन भारतीय इतिहास के सांस्कृतिक, राजनीतिक, कलात्मक एवं शिल्पविधि के नाना क्षेत्रों पर प्रभूत श्ष्टि पड़ती है। कवि इतने लोकप्रिय हुए कि उत्तर भारत के पूर्वी बंगाल से लेकर पश्चिम में मथुरा – वृन्दावन तक वह जन–जन के ह्रदय हार बन गये। उनके जन्म स्थानादि को लेकर बहुत विवाद चलता रहा। भारतवर्ष में जीवन वृत्त लिखने की प्रथा नही थी। प्राचीनकाल के किसी य'ास्वी व्यक्ति के जीवन चरित का लिखित प्रमाण नही पाया गया है। ऐसी परिस्थिति में कुछ आनुमानिक या काल्पनिक अथवा किंवदन्तियों का संग्रह ही जीवन वृत्त लिखने का प्रयास मात्र है।

उस काल में कवियों द्वारा रचित काव्य ही इस कृत्य को मूर्त रूप देने में सबसे सहायक सिद्ध हुई। ऐसी समस्या केवल भारतवर्ष में ही नही अपितु विदेशों में भी है। कवि विद्यापति वैसे तो शैक्सपियर के पूर्ववर्ती कवि है, किन्तु शैक्सपियर नाम के कोई व्यक्ति थे या नही अगर थे भी तो अनके नाम से नामांकित अनमोल नाटकों के संग्रहो के रचयिता वह ही है। ऐसी वैचारिक वैमन्सयता अर्सो से इंग्लैण्ड में बनी रही। बहुत से लोगों के कथनानुसार प्रसिद्ध दार्शनिक ''फ्रान्सिस बेकन'' ही छद्म नाम से इन सब नाटकों को खेला करते थे। शॉक्सपियर केवल इन नाटकों के अभिनेता मात्र है। कुछ समय पूर्व इस विवाद का अन्त हुआ है। ऐसे ही माहाकवि विद्यापति की स्वलिखित न ही कोई नाटक और ना ही कोई पुस्तक या कोई पत्र ही पाया गया है, न ही कवि की अपनी लिखि हुई कोई काव्य रचना ही मिलती है। परन्तु केवल उनकी हस्त लिखित वृहत ताड़पत्र की पोथी ''श्रीमद् भागवत'' आद्योपान्त प्राप्त हुई। प्राचीन एवं मध्यकाल के अनेक कवियों की भाँति विद्यापति का जीवन वृत्त भी अनुमान का विषय है कवि की कोई भी प्रमाणिक जीवनी उपलब्ध नहीं है।

2. अध्ययन के उद्देश्य

1. विद्यापति जीवन परिचय का विद्यापति का साहित्य–कर्म एवं काव्य–साधना का अध्ययन।
2. बाल विवाह एवं अवमेल विवाह से समाज में सामाजिक चेतना जागृत करना।

3. चर्चा

3.1 मिथिलाँचन लोक–साहित्य का रचना स्थान व विशिष्टताएँ :

साहित्य शब्द का अर्थःसाहित्य से तात्पर्य वाङ्मय से है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में :

राजशेखर ने साहित्य के संदर्भ में लिखा है : 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।' अर्थात् शब्द और अर्थ के यथायोग्य सहयोग वाली विधा साहित्य है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने साहित्य की व्याख्या इस प्रकार दी है : 'साहित्य शब्द ऐसे साहित्य के मिलने का एक भाव देखा जाता है, वह केवल भाव–भाव का, भाषा–भाषा का, ग्रंथ–ग्रंथ का मिलन नहीं है, किन्तु मनुष्य के साथ मनुष्य का, अतीत के साथ वर्तमान का, दूर के साथ निकट का अत्यंत अंतः– करण का मिलन भी है, जो कि साहित्य के अतिरिक्त अन्य से संभव नहीं है।[1] इसी सन्दर्भ में पाश्चात्य समीक्षक हेनरी हडसन ने लिखा है कि 'साहित्य मूलतः भाषा के माध्यम द्वारा जीवन की अभिव्यक्ति है। गहराई से देखा जाए, तो हेनरी की इस परिभाषा का लोक–साहित्य की ओर अधिक झुकाव है।

3.2 लोक–साहित्य का परिचय :

लोक–साहित्य की परंपरा उतनी ही प्राचीन मानी जा सकती हैं, जितनी कि मनुष्य जाति की है।लोक–साहित्य जनता की संपत्ति होने के कारण लोक संस्कृत्ति का दर्पण है। जन–संस्कृत्ति का जैसा सच्चा तथा सजीव चित्रण लोक–साहित्य में उपलब्ध होता है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। सरलता, स्वाभाविकता और सरसता के कारण यह अपना एक विशेष महत्त्व रखता है। साधारण जनता का गाना, हँसना, खेलना, रोना जिन शब्दों मेंअभिव्यक्त हो सकता है, वह सब कुछ लोक–साहित्य में आता है। किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृत्ति, धर्म, रीति–रिवाज, कला–साहित्य एवं सामाजिक आकांक्षाओं का सूक्ष्म अवलोकन लोक–साहित्य के द्वारा सुलभ हो जाता है, लेकिन लोक–साहित्य के बारे में प्रश्न उठता है कि लोक और साहित्य दो शब्दों को मिलाकर लोक–साहित्य शब्द बनता है, इसलिए सबसे पहले 'लोक' और 'साहित्य' शब्द को समझना आवश्यक हैं।

3.3 लोक शब्द का अर्थ :

लोक–साहित्य में 'लोक' शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से हो रहा है। यह शब्द संस्श्त की 'लोक' धातु में – 'ध्वन' प्रत्यय जोड़ने से निर्मित हुआ। इस धातु का अर्थ है, 'देखना'। इसका लट् लकार में अन्य पुरुष एकवचन रूप 'लोकते' होता है।

अतः 'लोक शब्द का मूल अर्थ हुआ देखनेवाला। इसलिए लोक शब्द का अभिप्राय उस सम्पूर्ण जनसमुदाय से है, जो किसी देश में निवास करता हैं। ' इसी प्रकार पुराणों में भी 'लोक शब्द स्थान के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त है। 'लोक' शब्द से हिन्दी में लोग शब्द बना है, जिसका अर्थ है, स्थान, संसार,प्रदेश, जन या लोग, समाज, प्राणी, यश, दिशा आदि।

इस प्रकार उपनिषद्ों में दो लोक माने गए हैं। इहलोक और परलोक। निरुक्त में तीन लोकों का उल्लेख है – पृथ्वी, अंतरिक्ष और भू–लोक। पौराणिक काल में सात लोकों की कल्पना हुई और फिर पीछे सात लोक मिलाकर चौदह लोक किए गए।

डॉ. सत्येन्द्र ने 'लोक' पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है : 'लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।'

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने भी इसी बात का समर्थन करते हुए कहा है, कि जो लोक संस्श्त या परिष्श्त वर्ग से प्रभावित न होकर अपनी पुरातन स्थितियों में ही रहते हैं, वह लोक होते हैं।'

उपर्युक्त विचारों के आधार पर यह कहा जा सकता है, कि 'लोक मानव–समाज का वह वर्ग है, जो अपनी प्राचीन मान्यताओं एवं परम्पराओं के प्रति आस्थावान है, वह आधुनिक सभ्यता एवं शत्रिमता से दूर अपनी प्राचीन संस्कृत्ति, मान्यताओं एवं परम्पराओं को नहीं तोड़ता। वास्तव में लोक वही है, जिसमें युग की मनोवृत्तियों के कुछ न कुछ अवशेष उपलब्ध हों व जो स्पष्ट तटस्थ, मुखान्तरित और जीवान्त का माध्यम हो।

इस प्रकार 'लोक' शब्द की व्याप्ति में नगर–गाँव आदि सब कुछ आ जाता है। इसे नगर या गाँव की सीमित परिधि के अन्तर्गत बाँधना उचित नहीं है और न ही इसे जन का पर्याय मानना भी उचित है। ग्राम या जन शब्द लोक के समक्ष संकुचित अर्थ एवं क्षेत्रवाले प्रतीत होते हैं। वर्तमान समय में विद्वानों द्वारा लोक शब्द को ग्राम के पर्याय के रूप में न मानकर विस्तृत अर्थ में स्वीकार किया गया है। विश्वमित्रस्य रक्षति ब्रह्मद भारत जनं। ऋग्वेद के प्रसिद्ध पुरुष सूक्त में लोक शब्द का व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों अर्थ में किया गया है।

नाभ्या आसीदेन्तरिक्ष शीर्ष्णो द्यौः समवर्तन।

पदय भूमिर्दिशः श्रोता तथा लोका अकल्प्ययन।।

हिन्दी के भक्त कवि तुलसीदास ने लोक तथा वेद के मूल्यों को प्रेम के आधार पर समान मानते हुए लिखा हैं – 'लोकहुँ वेद सुसाहिब रीती। विनय सुनत पहिचानत प्रीती।।

3.4 लोक–साहित्य :

लोक–साहित्य की व्यापकता मानव जन्म से लेकर मृत्यु तक की सम्मिलित सम्पत्ति है। लोक–साहित्य का विषय क्षेत्र बहुत ही व्यापक है और कोटि–कोटि जन समुदाय तक लोक–साहित्य का प्रचार–प्रसार होता है। लोक–साहित्य एक शास्त्र है, जो अपने–अपने कई शास्त्रों और एक बड़े इतिहास को समाहित किये हुए है। लोक–साहित्य को समझने के लिए कई विद्वानों ने भिन्न–भिन्न परिभाषाएँ दी हैं।

लोक–साहित्य के गूढ़ अर्थ को सहजता से समझाने के लिए 'हिन्दी साहित्य कोश' के संपादक ने लिखा है कि ''वास्तव में लोक–साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोक–समूह अपनी

ही मानता है, और जिसमें लोक की युग–युगीन वाणी की साधना समाहित रहती है, जिसमें लोकमानस प्रतिबिम्बित रहता है। इसी कारण जिनके किसी भी शब्द में रचना–चैतन्य नहीं मिलता है, जिसका प्रत्येक शब्द, प्रत्येक स्वर, प्रत्येक लय और प्रत्येक लहजा सहज ही लोक का अपना है और उसके लिए अत्यन्त सहज और स्वाभाविक है।वास्तव में लोक–साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जिसे भले ही किसी भी व्यक्ति विशेष ने न गढ़ा होय परंतु आज जिसे सामान्य लोकसमूह अपनी ही मानता है, जिसमें लोक के युग–युगीन वाणी साधना सम्मिलित रहती है, जिसमें लोक मानस प्रतिबिम्ब रहता है।

लोक–साहित्य में सदैव लोक भावनाओं को सम्मान दिया जाता है। ड□. दिनेश्वर प्रसाद ने कहा है : 'लोक और साहित्य के अभिप्रायों पर पृथक–पृथक विचार करने पर लोक–साहित्य की जो सम्मिलित संकल्पना उभर कर सामने आती है, वह केवल यही है कि यह लोक का सामुदायिक मौखिक साहित्य हैं।'

3.5 लोक–साहित्य की अवधारणा :

जन–जीवन की भावनाओं एवं विचारों के संचित कोश को ही विद्वानों द्वारा लोक–साहित्य का नाम दिया गया है। जन–जन के इस सचित्र कोश को मानव द्वारा हृदय और मस्तिष्क में सुरक्षित रखा गया है और अनेक अवसरों पर आवश्यकता के रूप में इसका उपयोग किया जाता है। फलस्वरूप वह मानव जीवन का अभिन्न अंग बन गया।

लोक–साहित्य की युगों–युगों की लम्बी यात्रा के मध्य न जाने कितनी परम्पराएँ बनीं और मिटी, समाज में न जाने कितने परिवर्तन हुए, मान्यताएँ बदलीं, आस्थाएँ बदलीं, विचारधाराएँ बदलींय किन्तु लोक–साहित्य के प्रति लोक–मानव की आस्था में तनिक भी कमी नही आई और वह निरन्तर पल्लवित और पुष्पित होती रही।

'लोक–साहित्य की कोई एक सुनिश्चित परिभाषा दे सकना थोड़ा कठिन है, क्योंकि लोक–साहित्य लोकमानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। लोक–साहित्य अलिखित और परम्परागत् होता है किन्तु आज ऐसे लोक–साहित्य की कमी नहीं है, जो आज लिपिबद्ध है या बहुत दिनों से लिखित रूप में चला आ रहा है।' अनेक विद्वानों द्वारा लोक–साहित्य को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है।

4. निष्कर्ष

महाकवि विद्यापति भारतीय साहित्य के उन गिने–चुने जिम्मेदार रचनाकारों में से हैं, जिनकी रचनात्मकता राज्याश्रय में रहने के बावजूद चारण–काव्य की ओर कभी उन्मुख नहीं हुई। उनका राष्ट्र–बोध, संस्कृति–बोध, इतिहास–बोध, और समाज–बोध सदा उनको संचालित करता रहा। उन पदों की असंख्य पंक्तियाँ मैथिल–समाज में आज कहावत की तरह प्रचलित हैं। उन पदों का विधिवत संकलन किया जाए, तो लगभग हजार के आँकड़े होंगे। पदों में चित्रित जनजीवन का वैविध्य देखकर अचरज होना स्वाभाविक है कि किसी एक व्यक्ति के पास स्थान–काल–पात्र, लिंग–जाति–वर्ग–सम्प्रदाय, शोक–उल्लास,

जय–पराजय, नीति–धर्म–दर्शन–इतिहास–शासन, साहित्य–कला–संगीत–संस्कृति, युद्ध–प्रेम–पूजा... जैसे तमाम क्षेत्रों का इतना सूक्ष्म अवबोध कैसे हो सकता है। अचरज जो भी हो, पर सत्य यही है! ऐसे पूर्वज साहित्यसेवी के अवदान से गौरवान्वित भारतीय साहित्य धन्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- ई.ए., वेस्टर मार्क, द हिस्ट्री ऑफ ह्यूमन मैरिज, वाल्यूम–1, पृ0 26
- के.एम. कपाड़िया (1955), मैरिज एण्ड फेमिली इन इण्डिया, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,लन्दन, पृ0 168
- मनुस्मृति, 9/96
- के.एम. कपाड़िया, उपरोक्त, पृ0 168
- के.एम. कपाड़िया, उपरोक्त, पृ0 201
- ऋग्वेद, 10/85/36,/5/3/2, 5/28/3, 3/53/4
- शतपथ ब्राह्मण, 5/2/1/10
- ऐतरेय ब्राह्मण, 33/1
- मनुस्मृति, 9/94
- अर्थशास्त्र, 3.3
- अर्थशास्त्र, 3,3
- मनुस्मृति, 9,90–91
- अथर्व वेद, 14/14
- युजुर्वेद, 8/1
- पी.एन. प्रभु, 1958, हिन्दू समाज का संगठन, पृ0 258
- विद्यापति (रगानाथ झा) साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
- विद्यापति और उनकी पदावली– सं. कृष्णदेव शर्मा, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली
- विश्वकवि विद्यापति–लेखक सीताराम झा 'श्याम' प्रकाशक, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार